ISSN : 2456-8856

पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510 डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30 पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 26, अंक 240 अक्टूबर 2023

जय भीम

धम्मचक्र प्रवर्तन दिवस

नमो बुद्धाय

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 26 अंक 240
अक्टूबर 2023

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

Peer Review Committee
डॉ. श्रवणकुमार मेघ, जोधपुर(राजस्थान)
प्रो. दत्तात्रय मुरुमकर, मुंबई (महाराष्ट्र)
प्रो. रहिम श्रीवास्तव, उज्जैन (म.प्र.)
डॉ. बी.ए.सावंत, सांगली (महाराष्ट्र)

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	भारत में बंधुआ मजदूरी	डॉ. श्रवण कुमार	04
3.	भाषा और चिंतन में तीसर लिंग	डॉ. रजनी दिसौदिया	07
4.	हिन्दी सिनेमा में दलित विमर्श एवं चिंतन	डॉ. अरन्विद कुमार पाल डॉ. आशुतोष वर्मा	10
5.	Administration of Chandergupt Maurya	Dr. Kavita Ram	12
6.	Sri Aurobindo Ghosh as a Radical Feminist	Sukla Roya (Reseach Scholar) Dr. Indrani Ghosh (Assistant Professor)	17
7.	देवनागरी लिपि के विभिन्न सोपान	ब्रजेश उपाध्याय	24

UGC Care Listed Journal
खाते का नाम – आश्वस्त (Ashwast)
खाते का नं.– 63040357829
बैंक – भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा– फ्रीगंज, उज्जैन (Freeganj, Ujjain)
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 20/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 200/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 2,000/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 20,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

भारत को अपनी किसी प्राप्ति पर गर्व हो सकता है, उसे दुनिया के प्रति किसी योगदान पर नाज हो सकता है तो वह है तथागत बुद्ध । वे पूरे विश्व के प्रकाश–स्तंभ हैं। उन्होंने ऐसा धम्म चलाया जो मानव को मानव से जोड़ता है, जो मनुष्य को प्रत्येक शास्त्रीय गुलामी से आजाद करता है। जो मनुष्य के जन्म को नहीं, बल्कि उसके कर्म को उसकी स्थिति का निर्धारक समझता है। यह वास्तविक अर्थों में धर्म चक्कर का परिवर्तन है।

बुद्ध मध्यम मार्ग को मानने वाले है जो कि न तो काम–भोग का मार्ग है और न काया–क्लेष का मार्ग है। पांचों परिव्राजकों ने उनकी बात ध्यान से सुनी। बुद्ध ने पहली बात यह बताई कि उनके सद्धम्म को आत्मा, परमात्मा से कुछ लेना–देना नहीं है। उनके सद्धम्म को मरने के बाद (आत्मा का) क्या होता है, इससे कुछ सरोकार नहीं है। उनके सद्धम्म को कर्मकाण्ड के क्रिया–कलापों से भी कुछ लेना–देना नहीं है। उनके धम्म का केन्द्र बिन्दु है, आदमी और इस पृथ्वी पर रहते समय आदमी का आदमी के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए? यह उनकी पहली स्थापना है। उनकी दूसरी स्थापना है कि आदमी दुःखी है, कष्ट में है और दरिद्रता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। संसार दुःख से भरा पड़ा है और धम्म का उद्देश्य इस दुःख का नाश करना ही है। इसके अतिरिक्त सद्धम्म कुछ नहीं है। दुःख के अस्तित्व की स्वीकृति और दुःख के नाश का उपाय यही धम्म की आधारशीला है।

बुद्ध ने परिव्राजको से कहा–''कोई भी आदमी जो अच्छा बनना चाहता है उसके लिये यह आवश्यक है कि वह कोई अच्छाई का माप–दण्ड स्वीकार करें।'' उन्होंने आगे कहा मेरे पवित्रता के पथ के अनुसार अच्छे जीवन के पांच माप–दण्ड है–1. किसी प्राणी की हिंसा नहीं करना। 2. चोरी नहीं करना अर्थात् दूसरे की चीज को अपनी नहीं बना लेना। 3. व्याभिचार नहीं करना। 4. असत्य नहीं बोलना। 5. नशीली चीजें ग्रहण नहीं करना।

''मैं कहता हूँ कि हर आदमी के लिये यह परमावश्यक है कि वह इन पांच शीलों को स्वीकार करें, क्योंकि हर आदमी के लिये जीवन का कोई माप–दण्ड होना चाहिए, जिससे वह अपनी अच्छाई–बुराई को माप सके। बुद्ध के अनुसार ये पांच शील जीवन की अच्छाई–बुराई मापने के माप–दण्ड है।

बुद्ध ने परिव्राजको को धम्मोपदेश देते हुए यह भी बताया कि ''दुनिया में हर जगह पतित (गिरे हुए) लोग होते ही हैं, लेकिन पतित दो तरह के होते हैं। एक तो पतित वे होते हैं जिनके जीवन का कोई माप–दण्ड होता है, दूसरे पतित वे होते हैं जिनके जीवन का कोई माप–दण्ड ही नहीं होता। ऐसे लोग जिनके जीवन का कोई माप–दण्ड नहीं होता, वह पतित होने पर भी यह नहीं जानता कि वह 'पतित' है। इसलिये वह हमेशा पतित ही रहता है। दूसरी ओर जिसके जीवन का कोई माप–दण्ड होता है वह हमेशा इस बात की कोशिश करता है कि पतितावस्था से ऊपर उठे। क्योंकि वह जानता है कि वह पतित है, गिर गया है। आदमी के लिये जीवन–सुधार का कोई माप–दण्ड होने और नहीं होने में यही बड़ा अंतर है। आदमी अपने स्तर से नीचे, गिर पड़े यह इतनी बड़ी बात नहीं है जितना यह कि आदमी के जीवन का कोई स्तर ही नहीं है।

इसके पश्चात् बुद्ध ने परिव्राजको को कहा कि हे! परिव्राजको तुम पूछ सकते हो कि इन पांच शीलों को जीवन का मापदण्ड ही क्यों स्वीकार किया जाये? तो इस प्रश्न का उत्तर तुम्हें स्वयं ही मिल जावेगा। यदि तुम अपने से ही प्रश्न पूछो–क्या यह शील व्यक्ति के लिये कल्याणकारी है? और साथ ही यह भी पूछो, क्या इन शीलों का पालन करना समाज के लिए कल्याणकारी है? ''यदि इन दोनों प्रश्नों का उत्तर स्वीकारात्मक है तो इससे सीधा परिणाम निकलता है कि मेरे पवित्रता के पथ के ये पांच शील इस योग्य हैं कि उन्हें जीवन का सच्चा माप–दण्ड मान लिया जाये।''

नमो बुद्धाय! भवतु सब्ब मंगलम्।

– डॉ. तारा परमार

भारत में बंधुआ मजदूरी

– डॉ. श्रवण कुमार

आदिकाल से आज तक दलित, शोषित, शूद्र, अतिशूद्र साम्राज्यवाद और जातिवाद के चलते नाना प्रकार के कष्ट सहन कर रहा है। तथाकथित आर्य मूल निवासियों को असुर, दैत्य एवं पापी कहकर अपमानित करते रहे हैं। आज इस समाज को गुलाम एवं लाचार बनाकर मुख्यधारा से काट दिया गया है उन्हें शिक्षा एवं प्रमुख कार्यों से बहिष्कृत कर दिया गया है। अपने स्वार्थों के लिए 'ईश्वर प्रदत्त' ग्रंथों की रचना की है। भारतीय समाज के ढांचे को चार परतों में बांटकर शूद्र चौथा वर्ग तीन वर्णों की गुलामी करने के लिए बाध्य कर दिया है। भारत में दासों और अमेरिका तथा अफ्रीका के दासों में अन्तर इतना ही है कि भारत के दासों को आर्यों ने विजित कर दास बनाया और विदेशी दासों को सामन्तों ने जबरन पकड़कर दास बनाया। इन गुलामों को बैलों के स्थान पर जोतकर काम लिया जाता था। उन्हें खाने के लिए भोजन, पीने के लिए पानी की एक बूंद के लिए 'ठाकुर के कुआं'[1] से पानी न देकर सख्त बदबूदार पानी पीने के लिए मजबूर किया जाता था। दिन भर कमरतोड़ मेहनत के बाद मुँह से खून निकल आता था। ये ही उनके अन्नदाता एवं मालिक थे। उनके बच्चे दुःखों से रोते–बिलखते–अश्रुधारा बहाते मजदूरों के कष्टों का जीवन जीते थे।

ज्योतिबा फुले के शब्दों में – 'परशुराम ने 21 बार (मूल निवासी) क्षत्रियों को सपरिवार नष्ट किया।... विधवा स्त्रियों को गोद से चार–पांच महीने के निर्दोष बालकों को छीनकर दुष्टतापूर्वक जान से मार दिया।[2] आज यह आदिवासी परिवार स्वयं को अहंकार से सैनी, कुर्मी, स्वर्णकार, प्रजापति, कुंभकार, विश्वकर्मा, लुहार आदि मानकर इनसे अलग हो गये। किंतु इन्हें शूद्र ही कहा जाता है। भारत में दादाभाई नौरोजी, ज्योतिबा फूले, गोविंद रानाडे, विष्णुशास्त्री चिपलूणकर, गोपाल गणेश आगरकर, ताराबाई शिंदे एवं डॉ. भीमराव अम्बेड़कर ने बालविवाह, विधवा विवाह, सती प्रथा एवं श्राद्ध पर रोक लगाकर शिक्षा की अलख जगायी। किंतु आज भी भारत में बंधुआ मजदूर खदानों में काम करते, भट्टों में अपना लहू बहाते शोषण के शिकार होते मिल जायेंगे। इसका कारण कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' एवं नीतिवादी धर्म ग्रंथ हैं। "कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि भूमि पर समस्त अधिकार राजा में निहित है उसे जमीन की उपज से रैयत को आजन्म लाभ उठाने का अधिकार है जिस पर वह खेती करता है इसमें यह माना गया है कि खेती के अयोग्य सभी भूमि पर रैयत का पुश्तैनी हक है।[3]

भारतीय समाज भू–स्वामी एवं उत्पादक दो वर्गों में सामन्ती व्यवस्था के अधीन चलता है। मुस्लिम शासकों ने भी जमींदारों की भूमि का हक में कोई परिवर्तन नहीं किया किन्तु "वंशानुगत जमींदारी प्रणाली में रूपान्तरित होते राजवंश को करों का भुगतान करने की प्रथा की संभावना नहीं थी। मुगल शासन काल में कोई अभिजात वर्ग नहीं था जो भूमि के स्वामित्व पर आधारित हो।[4]

मुगल शासन काल में भू–राजस्व के भुगतान के लिए तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त स्थापित किये थे 'हिन्दू राजाओं का अपने क्षेत्र पर पूर्ण अधिकार एवं नियंत्रण था। दूसरे मुगल सरकार अपने लिए कर वसूलने वालों को हमेशा नकद के रूप में वेतन नहीं देती थी। इसकी बजाय कर वसूलने वालों को उनके लिए निर्धारित क्षेत्रों से कर की वसूली की पूरी जिम्मेदारी सौंप दी जाती थी। सरकारी स्तर पर छान–बीन करने के बावजूद इन अधिकारियों को कर वसूलने में एक तरह से खुली छूट प्राप्त थी। तीसरे कुछ मामलों में ये अधिकारी गाँव के मुखिया पर भरोसा नहीं करते थे और सरकारी खजानों में जमा करने के लिए किसानों से सीधे कर वसूलते थे।[5]

ये कर वसूलने वाले एजेंट थे। दमन एवं यन्त्रणा का अस्तित्व था। कवि मुकुंदराम चक्रवर्ती लिखित चण्डीमंगल में दिहिदारों पोतदारों आदि जैसे मुगल अधिकारियों द्वारा अवर्णनीय यातना दिये जाने के अनेक प्रसंग मिलते हैं। किसानों के दोहन पर कोई सुनवाई नहीं थी। केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था के काफी दूर होने के कारण स्थानीय अधिकारियों द्वारा अमानवीय व्यवहार होना आसान था।

सामान्य जनता मुगल साम्राज्य के बाद सूबे, जमींदारों, जागीरदारों की फौज के नीचे पिसने लगी। पानी के अभाव में किसानों एवं मजदूरों में भूखमरी फैल गयी।

अंग्रेजों ने इंग्लैण्ड का माल बेचने के लिए उद्योग–धन्धों को कच्चे माल की कमी पूर्ति करने के लिए सबसे पहले किसानों को गुलाम बनाया तथा उन्हें उद्योग–धन्धों, कोयले की खदानों में झोंक दिया। अंग्रेजों ने भी गाँव के मुखिया, जमींदार, गुमाश्ता को ही जमीन का असली मालिक माना तथा वह साहूकार अंग्रेजों का एजेंट था। वह जनता से पूरी ताकत से कर वसूलता था। उन्होंने जमीन की बिक्री, जमीन का वितरण और गिरवी के रूप में जमीन रखना शुरु किया इससे नये गांटीदार, पट्टनीदार एवं दर पट्टनीदार और ताल्लुकदार वर्गों का उदय हुआ। अंग्रेजों एवं ठाकुरों दोनों के सामुहिक शोषण से किसानों को जमीन का पुश्तैनी हक सदा के लिए छोड़ना पड़ा। धूर्त अंग्रेजों का मस्तिष्क, मुगलों से भी ज्यादा उर्वर था वे सभी शोषक वर्ग जो अंग्रेज, मुगल, तुर्क एवं ठाकुर सभी मूल एक ही थे चेहरे अलग थे। इनके शोषण से किसानों की चीख धीमी एवं खामोश पड़ गयी। इससे खेती–बाड़ी का काम ठप्प हो गया। मुगलों एवं ठाकुरों की तरह अत्याचार, यन्त्रणा, बलात्कार और लूटपाट ही उनके हथियार थे। अंग्रेजों द्वारा 'कर रोपण' 1772 ई. में लागू की गयी जिसमें पंचसाला बन्दोबस्त, 'एकसाला बन्दोबस्त' कर प्रणाली लागू की गयी। जिससे जनता पर शोषण का घोर अत्याचार शुरु हुआ।

अंग्रेजों को जमींदारों द्वारा 30 लाख पौंड जनता से कर वसूल कर देना होता था। यह राशि न वसूलने पर उन्हें अभिशापित एवं त्राशित किया जाता था।

1938 में मैमनसिंह के महाराजा ने घोषणा कि 'जमींदारों के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए सरकार के हाथ मजबूत करने होंगे।[6] दक्षिण भारत में कर स्थापित करने के लिए रैयतबाड़ी प्रणाली स्थापित की गई। जिसमें जमींदार यह कर अंग्रेजों को न देकर स्वयं के लिए वसूलने लगी। इस द्वैध शासन की भट्टी में जनता दो पाटों में पिसने लगी।

एक इंच जमीन तक हड़पने के लिए अंग्रेजों ने बन्दोबस्त, रैयतबाड़ी एवं महलवारी तीन शोषण हथियारों से शोषण करना शुरु कर दिया। किसानों ने हल, बैल एवं बीज सब कुछ खो दिया वह बंधुआ मजदूर बन गया। किसान की दशा प्रेमचंद के 'गोदान' उपन्यास में 'होरी' जैसी थी। सूदखोर महाजन अपने कर्ज को बढ़ा रहे थे। उन्हें दुःखभरी जिल्लत की जिन्दगी नसीब में मिली ।

आज मजदूरों का एक बड़ा हिस्सा बंधुआ मजदूर, झोंपड़–पट्टी का एक बड़ा हिस्सा बंधुआ मजदूर, झोपड–पट्टी में जीवन सफर कर रहा है। इन्हें 'सलूम डाँग' कहकर भारतीय इतराते हैं। इन्हें आज हाशिये का समाज कहा जाता है। कर्ज देकर गुलाम बनाने की नीति आदिवासियों की ईश्वरवाद से शुरू थी आज वह भाग्यवाद एवं नियतिवाद में बदल गया है इनकी जड़ें गहरी हो गयी है। गुलामी में बिहार की सूची भारत में सबसे नीचे है यहाँ का कमिया वर्ग इस श्रेणी में आता है। मालिक बिना बयान के ही इस समाज का काम लेता है। आज सरकार रामराज्य के नाम पर केन्द्रीकृत नौकरशाही शासन स्थापित करना चाहती हैं। जिसमें बड़े–बड़े उद्योग स्थापित कर अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत करके एक विशेष वर्ग को स्थापित करना इनका लक्ष्य है। रूसो के अनुसार 'अर्थ–व्यवस्था का आधार

आत्मप्रेम है, परोपकार नहीं जिसमें सभी व्यक्ति अपने लाभों के लिए कार्यरत है।[7]

मनुष्य की 'असामाजिक–सामाजिकता' आर्थिक प्रगति का आधार है क्योंकि वह उसमें सम्मान, शक्ति और धन की इच्छा पैदा करती है । यह धनिक साहुकार इस व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं। महाजन अपना अनाज का कोठर खाली करने के लिए किसान को कर्ज देता है। इस प्रकार कर्ज से कर्ज बढ़ता है। अंग्रेज कंपनी ने सरकार के माध्यम से अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए महाजनों को बढ़ावा दिया।

1799 ई. सातवें विनिमय कुख्यात 'हैफटम ला' की घोषणा हुई इस कानून में जमींदारों और महाजनों को रैयतों एवं किसानों से जमीन खाली करवाने के अधिकार दिये।[8] सरकार ने 1793 ई. फसल जब्त करने का अधिकार 'पंजाब लॉ' में जमींदार मनमाने रूप में कर लगा सकता है। 1859 ई. के बंगाल कर कानून के मुताबिक निर्धारित कर को जमींदार किसी भी बहाने बढ़ा सकते थे।[9]

समूचा देश जमींदार, ताल्लुकदार, ठिकानेदार, पट्टनीदार, महाजन के खूंखार भेड़ियों का शिकारगाह बन गया ।

इससे सम्पूर्ण भारत में शोषण का काम ऊदबिलाव एवं जंगली बिल्ली को दे दिया आज क्रूर भाग्य या ईश्वरवाद इनका ही है। इसके फलस्वरूप 1855–56 में संथाल विद्रोह, दक्कन का किसान विद्रोह एवं मालाबार में मोपला विद्रोह ने साहूकारों एवं महाजनों के दशावतार ईश्वरवादी नकाबपोश चेहरों की असलियत को समझ गये थे। आज एन.जी.ओ. एवं समाज सुधार संस्थाएं मोटी राशि लेकर झूठे प्रचार कर इस जनता का दमन करती है।

किसानों को अपनी किसानी से हाथ धोना पड़ा, जमीन गिरवी रखनी पड़ी, दो मन चावल उधार लिये लौटा नहीं पाया। अपनी पुत्री एवं बच्चों को बेचना शुरु कर दिया सतना, मध्यप्रदेश में चाचा ने अपने पुत्र को 150 रुपये में साहूकार को बेच दिया। खेतिहर मजदूरों में अधिकांश लोग आदिवासी एवं हरिजन हैं। आज आजादी के प्रारम्भिक दशकों में पंचवर्षीय ग्राम विकास योजनाएँ समाप्त कर दी गयी है। आज कृषि के लिए उल्लेखनीय प्रगति का दावा नहीं किया जा सकता है।

आज काश्तकारों की योजना सुरक्षा, नारों, भाषणों एवं कागजों की फाइल में दब गयी है। आज काश्तकारों को किसी तरह की सुरक्षा नहीं है उन्हें जमीन से बेदखली के लिए सड़कों पर आना पड़ रहा है।

आज ग्रामीण आबादी 1967–68 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के अनुसार 70 प्रतिशत हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे रहता हैं 'बिहार में आज बंधुआ मजदूरों का प्रतिशत 45.8 है तथा प्रति व्यक्ति आय 100 रुपये से कम है।[10] आज शादी–विवाह, दाह–संस्कार में कर्ज लेना पड़ता है बच्चों की पढ़ाई के लिए कर्ज, जमीन बेचनी पड़ती है शिक्षा इतनी महंगी हो गयी है, सरकारी शिक्षकों को आंकड़े जुटाने एवं पशु–गणना का काम दे दिया है। किसी व्यक्ति की हैसियत उसकी जाति से लगाते हैं । जाति एवं वर्ग भेद से भारत में आदिवासी एवं दलित सबसे ज्यादा उत्पीड़ित हैं। वे पूरे देश में झाड़ू लगाकर, गटर साफ करके भी एक रोटी के टूकड़े के लिए घर की दहलीज पर झोली फैलाये बच्चों के भोजन के लिए गुहार लगाता है। सरकार इनके संरक्षण के कागजी घोड़े दौड़ा रही हैं। किंतु उन्हें मुख्य धारा में लाने के लिए ठोस कदम 'ढाक के तीन पात' की तरह है। इसका निराकरण करना हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है। इसके लिए आठ–आठ आँसू न बहाये संवेदना के साथ सामूहिक प्रयास से मानवता स्थापित करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए किन्तु है नहीं।

– डॉ. श्रवण कुमार
सह–आचार्य, हिन्दी विभाग
भाषा प्रकोष्ठ, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर (राज.)
मो. 9352671936

संदर्भ :

1. मुंशी प्रेमचंद – ठाकुर का कुआं
2. गुलाम गीरी की प्रस्तावना – ज्योतिबा फूले सामाजिक क्रांति के दस्तावेज सम्पादक शंभुनाथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2005, पृ. 772
3. भारत में बंधुआ मजदूर – महाश्वेता देवी, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, सं. 2013, पृ. 12,13
4. भारत में बंधुआ मजदूर – महाश्वेता देवी, वहीं, पृ. 13
5. भारत में बंधुआ मजदूर महाश्वेता देवी, वहीं, पृ. 13,14
6. भारत में बंधुआ मजदूर–महाश्वेता देवी, वही, पृ. 19
7. समाजवादी चिंतन का इतिहास – कृष्णकांत मिश्र, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, प्रथम सं. 2002, पृ.सं. 80
8. भारत में बंधुआ मजदूर – महाश्वेता देवी, वही, पृ. 26
9. भारत में बंधुआ मजदूर – महाश्वेता देवी, वही, पृ. 26
10. भारत में बंधुआ मजदूर – महाश्वेता देवी, वहीं, पृ. 52

भाषा और चिंतन में तीसरा लिंग

– डॉ. रजनी दिसौदिया

भूमिका – इस शोध आलेख का उद्देश्य तीसरे लिंग की दृष्टि से भाषा और समाज के संबंध को समझना है। सबसे पहले इस लेख में हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा के व्याकरण को आधार बनाकर यह समझने की कोशिश की गई है कि कैसे भिन्न–भिन्न भाषाओं के व्याकरण में लिंग व्यवस्था भी भिन्न है और साथ ही वह भिन्न लैंगिक पहचान वाले समाज की सामाजिक स्थिति को भी प्रदर्शित करती है। इस समाज विशेष के लिए अवमाननापूर्ण और पूर्णतः त्याग दिये जाने वाले रिवाजों और मान्यताओं के बनने के पीछे प्रकृति के नियम आधार का काम करते हैं।

बीज शब्द – संज्ञानपरक, चिंतनपरक, संप्रेषण–परक, किन्नर, लिंगबोध, क्रियापद, सहज वृतियाँ, भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा के तीन प्रमुख प्रकार्य माने जाते हैं। संज्ञानपरक, चिंतनपरक, संप्रेषणपरक प्रकार्य।[1] संज्ञानपरक प्रकार्य के अंतर्गत भाषा का काम है कि वह तमाम भौतिक–अभौतिक वस्तुओं, पदार्थों, विचारों, और भावों को नाम दे। किसी भी विचार, भाव और वस्तु का अस्तित्व ही इस बात पर टिका है कि उसको संबोधित करने के लिए कोई संज्ञा है, कोई नाम है। इसके बाद उस वस्तु पदार्थ या विचार के बारे में उसके गुण या दोष के बारे में चिंतन करने का काम भी भाषा के द्वारा ही होता है। वह वस्तु अथवा विचार क्या है ? कैसा है? कब से है? उसका रूपाकार, उसका फायदा और नुकसान क्या है? इस सबके बारे में चिंतन भी भाषा के द्वारा ही होता है। असल में मानव समाज का अस्तित्व ही भाषा पर टिका है।

तीसरे लिंग के लिए मानक हिन्दी में कोई संज्ञा शब्द नहीं बना। बेशक हिन्दी की स्थानीय भाषाओं (रूपों) में हिजड़ा, छक्का जैसे शब्द हैं और अब मानक में किन्नर शब्द इस्तेमाल किया जाने लगा है। पर इस शब्द का भी विरोध हो रहा है। अपने उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा में चित्रा मुद्गल लिखती हैं कि कैसे किन्नौर के रहने वाले लोगों ने जो किन्नर कहलाते हैं, तीसरे लिंग के लिए इस शब्द के इस्तेमाल पर आपत्ति दर्ज की है।[2] शब्द का अस्वीकार वास्तव में उस समाज विशेष का ही अस्वीकार है। और अगर इन संज्ञा शब्दों को स्वीकार कर भी लिया जाए तो भी इन शब्दों के अर्थ कितने नुकीले हैं इसके लिए भी चित्रा मुद्गल के उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा का यह अंश पढ़ा जा सकता है। "बस की बाट जोहते हुए मैं सोचता रहा, बा। किन्नर शब्द सुनते ही अवमानना न चाहते हुए भी क्यों सुलग उठती है।... किन्नर शब्द भले गाली न लगे मगर अपने निहितार्थ में वह उतना ही क्रूर और मर्मान्तक है, जितना हिजड़ा।[3]

हिन्दी भाषा के व्याकरण की ओर देखें तो तीसरे लिंग की स्थिति और भी ज्यादा चिंताजनक है। पहली वजह है हिन्दी में व्याकरण के स्तर पर केवल दो ही लिंगों की स्वीकार्यता और दूसरी वजह हिन्दी के

व्याकरण में लिंगबोध का, क्रिया पद पर टिका होना है। उदाहरण के लिए हम सब जानते हैं कि हिन्दी की वाक्य संरचना में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग की ही मान्यता है। एकलव्य जंगल में रहता है और ताड़का जंगल में रहती है। पुरुष रहता है और स्त्री रहती है। अब जो न पुरुष है और न स्त्री (ट्रांसजेन्डर) वे भी तो कहीं रहते होंगे? उनकी सूचना कैसे दी जाए? या हिन्दी समाज को इस सूचना की जरूरत ही नहीं है कि वे कहीं भी रहते हों? हिन्दी समाज यह जानना ही नहीं चाहता। हिन्दी भाषा का व्याकरण तीसरे या स्त्री और पुरुष से इतर किसी भिन्न लिंग की पहचान वाले मनुष्य को स्वीकार ही नहीं करता। असल में भाषा और उसका व्याकरण समाज के विश्वास और मान्यताओं का ही नेतृत्व करता है। जैसे संस्कृत और अंग्रेजी भाषा में तीसरे लिंग की स्वीकार्यता है। संस्कृत में नपुंसकलिंग और अंग्रेजी में थर्ड जेंडरकी उपस्थति (स्वीकार्यता) है। संस्कृत में पुरुष के लिए **वह** के स्थान पर **सः** का और स्त्री के लिए **वह** स्थान पर **सा** का प्रयोग होता है। साथ ही नपुसंकलिंग के लिए **वह** के स्थान पर **तत्** का प्रयोग होता है। इस तरह हम देखते हैं कि अंग्रेजी में पुरुष के लिए He का और स्त्री के लिए She का प्रयोग होता है और थर्ड जेंडर के लिए It का प्रयोग होता है। पर हिन्दी में ऐसी कोई संभावना नहीं है।

दूसरी स्थिति इससे भी ज्यादा पेचीदा है। हिन्दी के व्याकरण में लिंगबोध क्रिया पर टिका है। वाक्य विन्यास के केन्द्र में क्रिया ही होती है। किसी भी वाक्य का निर्माण ही तब होता है जब कुछ होता (या नहीं होता) है। अर्थात कोई क्रिया होती (या नहीं होती) है। इसका मतलब यह है कि हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो अपने हर वाक्य (कर्ता प्रधान) में यह निश्चित कर लेती है कि क्रिया को करने वाला कौन है? वह स्त्री है या पुरुष? किसी अन्य की कोई संभावना नहीं है। वह निर्जीव वस्तुओं को, जिनकी कोई लैंगिक पहचान नहीं होती उन्हें भी किसी न किसी लिंग (स्त्री या पुरुष) की कोटि में डालकर देखती है। जैसे पहाड़ पुल्लिंग है तो नदी स्त्री लिंग। रुमाल पुल्लिंग है तो बनियान स्त्रीलिंग। जबकि इसके मुकाबले संस्कृत और अंग्रेजी में ऐसी तमाम संज्ञाओं के लिए नपुंसकलिंग या थर्ड जेंडर का विकल्प है। इस मायने में वे भाषाएँ हिन्दी की अपेक्षा बेहतर स्थिति में हैं। दूसरा इन दोनों भाषाओं में लिंगबोध सर्वनाम पर टिका होता है तो यहाँ जब तक प्रयोक्ता प्रथम पुरुष में अपनी बात कहता है तब तक बोलने वाले का लिंग पता नहीं चलता क्योंकि यहाँ लिंग का बोध क्रियापद से नहीं होता। संस्कृत और अंग्रेजी अपने प्रयोक्ता को काफी हद तक यह जगह देती है कि वे अपनी लैंगिक पहचान बताए बिना अपनी बात कह सकते हैं, वहीं हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो कुछ विशिष्ट नियमों को छोड़कर लगभग सभी जगह अपने प्रयोक्ता को इस बात के लिए मजबूर करती है कि वह अपनी लैंगिक पहचान स्पष्ट करे और उसमें दो ही विकल्प हैं स्त्री या पुरुष।

बेशक संस्कृत और अंग्रेजी भाषाएँ हिन्दी के मुकाबले तीसरे जेंडर की स्वीकार्यता को लेकर बेहतर स्थिति में हैं पर वहाँ भी तीसरा लिंग उन निर्जीव वस्तुओं के लिए इस्तेमाल होता है जो लैंगिक पहचान से परे हैं। पेन पैंसिल, किताब पहाड़, नदी, नाला, हवा, आसमान इत्यादि कुछ भी। तो आगे का प्रश्न दिमाग में यह उभरता है कि समाज के उस समुदाय विशेष के लिए भी नपुंसक या थर्ड जेंडर जैसे शब्दों का प्रयोग क्या दर्शाता है? स्कूली शिक्षा में जीव विज्ञान की कक्षाओं में सजीव और निर्जीव के बीच का अंतर बताते हुए यह समझाया जाता है कि सजीव वे पदार्थ हैं जो न केवल समय के साथ–साथ बड़े होते हैं बल्कि समय आने पर अपने जैसे अन्य जीवों को पैदा भी करते हैं।

चाहे वे बीज गिराएँ, अंडे दें या बच्चे पैदा करें, तो क्या इसका मतलब वे जीव जो अपने जैसे जीवों को पैदा करने में अक्षम हैं उन्हें सजीव की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता? एक समुदाय जो अपनी स्पष्ट लैंगिक पहचान (अंग विशेष) के बिना पैदा होता हैं उसके प्रति समाज का तिरस्कार और अवमाननापूर्ण रवैया क्या इसी कारण है? एंथ्रोपोलोजिस्ट मानते हैं कि सामाजिक नियम बनने का आधार काफी हद तक प्राकृतिक नियम रहे हैं। प्राकृतिक नियम अर्थात प्रकृति अपने आप को बनाए रखने के लिए अपनी व्यवस्था स्वयं करती है। वे सभी जीव और प्राणी जो सजीव कहे जाते हैं जिन पर प्रकृति अपने आप को टिकाए हुए है, में चार सहज वृतियाँ (आदतें) पाई जाती हैं आहार, निद्रा भय और मैथुन। जिनमें इनमें से कोई एक भी गुण कम है वे मृत प्रायः हैं। वे स्वयं को बचाए नहीं रख सकते। इन्हीं प्राकृतिक नियमों के आधार पर जब सामाजिक नियम बने होंगे तो मैथुन (संतान पैदा कर सकना) बहुत बड़ा जीवन मूल्य रहा होगा। मनुष्य ने यही देखा कि प्रकृति अपने हर फूल को फल बनने का मौका नहीं देती। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि प्रकृति के यहाँ यही नियम है कि सौ फूलों में से कोई एक ही फूल फल बनकर बीज बनने तक का सफर तय कर पाता है इसलिए प्रकृति का नियम है ज्यादा से ज्यादा पौधे उगते रहे जिससे लगातार बीज बनते रह सकें। विज्ञान ने यह बताया है कि एक स्त्री जो संतान पैदा कर सकती है के अंडकोष में जन्म के समय से ही लाखों की संख्या में अंडे होते हैं जिनमें मानव भ्रूण बनने की संभावना होती है। अलग–अलग जलवायु के हिसाब से 13 से 15–16 वर्ष की अवस्था तक प्रायः सभी मनुष्य किशोरावस्था से प्रकृति के कर्म के लिए तैयार हो जाते हैं। इसी तरह जो मनुष्य प्रकृति के इस कर्म के लिए किसी कारण सक्षम नहीं होते उनकी प्रागैतिहासिक समाज को जरूरत नहीं होती होगी। या वे कमतर माने जाते होंगे। पर आज तो मनुष्य ने विज्ञान और तकनीक की सहायता से इतना विकास कर लिया कि वह अपने हर फूल को फल बना सके। अर्थात् विज्ञान और तकनीक ने शिशु मृत्यु दर और उन तमाम बीमारियों पर विजय पाई है जिसके कारण मृत्यु दर इतनी ज्यादा थी।

उपसंहार – आज यूँ ही जनसंख्या विस्फोट की स्थिति है। ऐसे में अगर कुछ मनुष्य लैंगिक विकलांगता के चलते बच्चे पैदा करने में सक्षम नहीं हैं तो इसी आधार पर उनका समाज से तिरस्कार और निष्कासन नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार पेड़ों की जरूरत सिर्फ उनसे पैदा होने वाले फलों के लिए ही नहीं है पेड़ हमें हवा, शीतलता के अलावा जीवन दायिनी ऑक्सीजन देकर हमारे जीवन को संभव बनाते हैं उसी प्रकार अब मनुष्य भी केवल लैंगिक अस्तित्व मात्र ही तो नहीं हैं उससे ऊपर उनके पास मस्तिष्क भी है। जिसका इस्तेमाल करके वे अपने और समाज के लिए उपयोगी और सार्थक हो सकते हैं। अतः समाज को तीसरे लिंग के प्रति अपने व्यवहार और मान्यताओं को सायास बदलना चाहिए। सामाजिक नियम और विश्वास समय–समय पर जरूरत के हिसाब से बदलते रहते हैं। समाज की सोच बदलेगी तो भाषा भी अपने आप बदलेगी।

– डॉ रजनी दिसोदिया
एसोशियेट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग, मिरांडा हाउस
दिल्ली विश्वविद्यालय मोबा. 9910019108

संदर्भ :

1. भाषा स्वरूप और संरचना – हेमचंद्र पाण्डे
2. "ध्यान रहे विनोद जी। किन्नर शब्द के इस्तेमाल से बचें। किन्नौर के होते हैं किन्नर। अंग्रेजी पढ़े–लिखे हैं आप, जानते ही होंगे। हिमाचल प्रदेश के लोगों ने जननांग वंचितों के लिए किन्नर शब्द के उपयोग पर आपत्ति प्रकट की है। नये शब्द की शुरुआत होगी, इस्तेमाल की आदत पड़ जाएगी लोगों को। नाला सोपारा...पेज नं (172)
3. नाला सोपारा.... चित्रा मुद्गल पेज नं. (42)

हिन्दी सिनेमा में दलित विमर्श एवं चिंतन

– डॉ. अरविन्द कुमार पाल
– डॉ. आशुतोष वर्मा

शोध–सार

सिनेमा के 100 साल के इतिहास में दलितो के विषय मे ज्यादा फिल्में नहीं हैं। शुरू मे ऐसा लगा कि गाँधी जी और उनके तरह दूसरे समाज सुधारकों की मदद से यह विषय लोकप्रिय होगा लेकिन जल्दी ही ऐसी फिल्में मुख्य धारा से बाहर चली गई। जब हम बॉलीवुड फिल्मों की संख्या को देखेंगे तो पाएंगे की दलित न सिर्फ जाति के वरीयता क्रम से बाहर है बल्कि सिनेमा से भी बाहर है। 140 करोड से ऊपर की जनसंख्या वाले देश की सिनेमा मे बहुजन जीवन के स्वाभाविक चित्रण का आभाव चिंताजनक है।

समाज और साहित्य मे जो भेदभाव दलितों के साथ किया गया और किया जा रहा हैं वह सिलसिला फिल्मों में भी जारी है। समस्या से भागने की प्रवृति और सब कुछ ठीक है बल्कि मनोवृति ने फिल्मों मे भी दलित समाज के साथ अन्याय ही किया। चूंकि भारत में समाज, वर्ग, जाति आधारित है इसलिए उच्च जातियो ने कलाओं का इस्तेमाल दलितों को महज भरमाने के लिए किया। ''दलित वह शोषित मानव है जो पैदा हुआ तब भी दलित है जिन्दा रहेगा तब भी दलित है और जब मरेगा तब भी दलित रहेगा और उसके विरोध का एक मात्र कारण वर्ग, धर्म है।''

कलाऐं समाज मे जन्म लेती हैं और अंततः समाज को प्रभावित करती है हिन्दी फिल्में इस बात का अपवाद नहीं हिन्दी फिल्मों के इतिहास के समाज में होते हुए सांस्कृतिक परिवर्तन को पकड़ा जा सकता है ये बात अलग है कि हिन्दी सिनेमा आज भी वहीं खडा नजर आता है जहाँ कल था।

बीज शब्द – दलित, अमानवीयता, प्रहार, जाति, छुआछूत, कुरीतियों, वर्ण व्यवस्था, शोध।

प्रस्तावना–सिनेमा के 100 वर्षों के इतिहास को देखें तो यह बात स्पष्ट रूप से निकल कर आती है कि हिन्दी फिल्में जाति प्रथा के प्रति कोई दृष्टिकोण पेश नहीं करती जबकि सतही तौर पर हिन्दी फिल्में ऊंच–नीच के भेदभाव अस्वीकार भी करती नजर नहीं आती है लेकिन हिन्दी सिनेमा में अछूत कन्या, सुजाता, अंकुर, पार, सद्गति, दिक्षा, समर, जैसे कुछ अपवाद नामों को छोड दें तो जाति प्रथा पर प्रहार करती कम नजर आती है।

हिन्दी सिनेमा में दलित समाज को लेकर फिल्मों की स्थिति वैसे रही जैसे हमारे इतिहास में वो मौजूद तो है लेकिन स्वीकृत नहीं है सिनेमा इस प्रवृति से कैसे अछूता रह सकता क्योकि पूँजी की शक्ति ऊँची जातियों के लोगों के हाथ में है इसलिये फिल्मों का विषय किस परिवेश का रहेगा वही लोग तय करते है। इस सबके बावजूद कुछ फिल्में ऐसी बनाई गई है जिसमें दलितों, आदिवासियों और पिछडे वर्ग की सामाजिक स्थिति को दिखाया गया है। हिन्दी सिनेमा ने दलित चित्रण को लेकर बहुत सी ऐसी फिल्मों का निर्माण किया जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारे जनमानस पर प्रभाव पडा जैसे अछूत कन्या, सुजाता, अंकुर, बवंडर, दामुल, रुदाली, अर्पण, आरक्षण, आर्टिकल 15, क्वीन, डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर, ए शुद्र द राइंजिम, मसान जैसी फिल्मों ने भारत में ऊँच–नीच के भेद भाव को बडे पर्दे पर दिखा कर समाज में फैली भ्रान्तियों को दूर करने की जो कोशिश की वह तारीफ के योग्य है। प्रस्तुत शोध–पत्र में हमने दलित चिंतन पर आधारित हिन्दी फिल्मों की अंतर्वस्तु का विश्लेषण किया है और निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास किया है।

अछूत कन्या 1936 – जाति प्रथा पर प्रहार करती फिल्म –

हिमांशु राय के बैनर तले फ्रैज ऑस्टन द्वारा सन्

1936 मे निर्देशित फिल्म **अछूत कन्या** भारतीय सिनेमा में जातिवाद पर प्रहार करती हुई प्रतीत होती है। देविका रानी (कस्तूरी) कस्तूरी उच्च जाति के प्रेमी अशोक कुमार (प्रताप) के प्रेम को समाज स्वीकार नहीं कर रहा है। जबकि प्रताप के पिता मोहन गांधीवादी व सुधारवादी फिल्म के पात्र है जो कस्तूरी के पिता के घनिष्ट मित्र भी है लेकिन यह मित्रता जातिगत स्तर को कभी नहीं छूती। फिल्म में सभी पात्र जाति प्रथा को मौन सहमति देते हुए दिखते है। दुखिया के अत्यधिक बीमार होने पर मोहन उसे समाज का विरोध झेलकर भी अपने घर मे सेवा सुश्रुषा के लिए ले आता है और इसी क्रम में वह अपना घर–बार गंवा देता है लेकिन प्रताप और कस्तुरी की शादी पर मौन रहता है प्रताप की शादी अपने ही वर्ग की मीरा से हो जाती है कस्तुरी एक व्यंग मयी पात्र बनी रहती है उसके जीवन का एक मात्र दुख प्रताप से शादी न दोना रहता है। जाति–बिरादरी, ऊँच–नीच के भेद–भाव को इस फिल्म के माध्यम से बहुत मार्मिक तरीके से उतारा गया है। फिल्म में अछूत होते हुए भी नायिका को दूसरे के लिए अपना बलिदान देते हुए दिखाया गया। लेकिन समाज मे छुआछूत जैसी बीमारी कम होने का नाम ही नहीं ले रही।

अंकुर 1974 – जाति, वर्ग और लिंग के चौराहे पर खड़ी मानवता –

श्याम बेनेगल की पहली फिल्म अंकुर 1947 में रिलीज हुई जिसमे अन्नतनाग और शबाना आजमी की पहली फिल्म शामिल थी। ग्रामीण और शहरी दोनों परिवेश मे जाति, वर्ग और लिंग की पेचिदगियों को वास्तव में सरलीकृत तरीके से दिखाया गया है। फिल्म में भारतीय जाति व्यवस्था की कुरूपता विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों मे दिखाई देने वाली एक गहरी अंतरदृष्टि प्रदान करती है ग्रामीणों को उम्मीद है कि लक्ष्मी (शबाना आजमी) सूर्य की दासी के रूप में काम करेगी। हालांकि एक दलित होने में उसका विरोध सूर्य का खाना बनाने को लेकर होता है। लेकिन फिर भी वह लक्ष्मी से भोजन पकाने को कहता है। लेकिन फिल्म में सूर्य के घर में लक्ष्मी द्वारा छुई हुई किसी भी वस्तु को छूने से उसकी पत्नी मना कर देती है। आजाद भारत में जाति व्यवस्था और अवैध संबन्ध पर प्रहार करती हुई यह फिल्म हिन्दुस्तान के गावों के कई ऐसे किस्सों पर बात करती है जहाँ जात–पात तथा ऊँच–नीच आदि विषयों पर चर्चा की गई है।

दामुल 1985 अमानवीय अत्याचारों का सिनेमा –

चर्चित सामाजिक अलोचक प्रकाश झा ने 1985 में दामुल बनाई जिसमे अमीर लोगों द्वारा गरीबों का शोषण दिखाया गया है। दामुल बिहार की सामाजिक स्थितियों का खुलासा करती है। वर्गीय चरित्र को परत–दर–परत खोलती है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार से जूझते और जातिवाद का दंश झेलते उन दलितों की आत्मकथा को बिना किसी तर्क और लाग–लपेट के परोसती है जिसे देखकर हिन्दू समाज की उन जडता को समझा जा सकता है जहां आदमी व जानवर दोनों के लिए अभिशाप है। दामुल दलितो की उस कहानी को उजागर करती है जो उच्च एवं निम्न वर्ग के संघर्ष को दिखाती है। जिसमें दलितों में इतनी जागरूकता नहीं आयी कि वह अपने शोषण का प्रतिकार कर पाते। फिल्म की कहानी में बच्चा सिंह की खुन्नश यह है कि परधानी में माधो पाण्डेय ही जीतते रहे है। उन्हें हराने के लिए वह एक चाल चलते है और हरिजन टोले के गोकुल को चुनाव में खडा कर देते है। बच्चा सिंह हरिजन टोले मे जाकर माधो पाण्डे का कच्चा चिट्ठा खोलते है कहते है 'छुआ–छूत भेद भाव लोगों का बनाया हुआ है' बच्चा सिंह अपनी चाल में सफल तो हो जाते है लेकिन गोकुल चुनाव नहीं जीत पाता है क्योंकि बच्चा सिंह का तर्क था कि खड़े किये हम जिताएंगे हम तो राज कौन करेगा, चमार गांव में राजनीतिक दांव पेंच में बहुत खून–खराबा होगा यह कोई नहीं जानता था कि इस फिल्म के माध्यम से उच्च वर्ग की जातियों द्वारा निम्न जाति के लोगों के प्रति सभी कुकर्म किये जाते है। माधो पाण्डे ऐसा कोई कुकर्म नहीं जो विधवा महात्माइन के साथ करता है और अन्त में महात्माइन की हत्या भी

कर देता है और एक दलित संजीवना को उसी हत्या में फंसा देता है यह संजीवना उसका बन्धुआ मजदूर है उसके लिए बाप का कर्ज चुकाने की एवज मे गाय, बैल, बकरी चराने के लिए विवश होता है। उसके सामने कोई विकल्प नहीं बचता। जिस जाल में माधो पाण्डेय संजीवना को फंसा देता है वह उसके लिए दामूल साबित होता है उसे महात्माइन की हत्या में फासी दी जाती है और माधो एक तीर पे दो शिकार करता है ।

निष्कर्ष –

सिनेमा में क्या दिखाया जा रहा है यह महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि कैसे दिखाया जा रहा है यह महत्वपूर्ण है और इसी से दिखाने वाले की मानसिकता का पता चलता है यूँ तो उंगलियों पर गिनी जा सकने वाली संख्या में ऐसी कई फिल्में है जिनके कथानक आधार दलित रहे है। लगभग 100 साल के बूढ़े होते सिनेमा के इतिहास में कभी जातिप्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह जैसी कुरीतियों पर हमारे समाज मे फिल्में बनी और सफल भी रही लेकिन उनके केन्द्र मे कभी दलित विमर्श नहीं रहा। वह केवल भाईचारे का सन्देश देकर खत्म हो जाती है, जरूरत है कि सिनेमा को समाज आत्मसात करें और उस पर विचार करे। वर्तमान में हिन्दी सिनेमा ने दलित विमर्श पर जो फिल्में बनाई वह आजादी से पहले बनी फिल्मों से कमजोर रही लेकिन समाज में जागरूकता फैलाने का काम किया है। सिनेमा घर में अंधेरों मे दर्शकों के मन मे उठने वाली प्रतिक्रियाए हो सकता है कि बाहर के उजाले में दम तोड दे लेकिन उनसे सामाजिक, सांस्कृतिक या आर्थिक परिवर्तन को गति अवश्य मिलती है।

– डॉ. अरविन्द कुमार पाल,
सहायक आचार्य, जन–संचार विभाग, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश–791112 मो. 8932047805

– डॉ. आशुतोष वर्मा, सहायक आचार्य, सैम ग्लोबल विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्य प्रदेश
मोबा. 9889532699

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिनेमा और समाज 1993 विजय अग्रवाल साहित्य प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ 11
2. सिनेमा और समाज 1993 विजय अग्रवाल साहित्य प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ 18
3. वर्ण व्यवस्था एक वितरण व्यवस्था 2003 एच एल दुसाध संपर्क प्रकाशक नई दिल्ली 67
4. लोक प्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ 2001 जवरीमल्ल परख अनामिका पब्लिशर्स नयी दिल्ली पृष्ठ संख्या 114
5. सिने पत्रकारिता श्याम माथुर 2008 राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी जबलपुर पृष्ठ 221
6. मूल फिल्म 'अछूत कन्या'
7. मूल फिल्म 'अंकुट'
8. मूल फिल्म 'दामुल'

Administration of Chandergupt Maurya

- Dr. Kavita Rani (Civil Administration)

Civil Administration -

Chandergupt Maurya does not figure only as a warrior king but his administration, both civil and military was par excellence. His advisers and councillors were selected from intellectuals and top officials. Consequently the administration of Chandergupt Maurya touched its peak from various angles namely judicial administration, best administrative municipal management, excellent roads, efficient irrigation process, dynamic traffic arrangements, trade and commerce, superior police system, discouragement of slave system and the

like. Each and every wing of administration aimed at prosperity of the subjects. Notwithstanding all this, Historian Justin passed stricture that Chandergupt Maurya shifted the name of liberty to that of bondage and thereby oppressed his people. There is a probability that he might have viewed strict law and order that the Emperor enforced and the strict penal code which allowed corporal punishment like mutilation of limbs.[1]

The King was supreme and super head of the whole administration. He enjoyed full freedom. He himself took part in the activities of war. He was the supreme head of Judiciary. He selected his ministers and appointed the officials in accordance with his sole discretion. He was ever ready to see the welfare of his subjects even at the loss of his own pleasure and happiness. It is usually said about him that he cared even a fig for his meals and remained busy to provide facilities to his subjects.

The court of the King was famous for its magnificence throughout Asia. He was prominent for his justice. His palace surpassed in splendour and beauty. Patliputra was the capital of the Empire which was a town strongly fortified. It was the biggest city in India situated on the bank of the river son.[2] Vincent A. Smith writes that the imperial court here was maintained in a glorious style. A good quantity of gold was used. Richly carved tables and chairs, vessels arranged with precious stones were used. The king was taken in golden palanquin studded with pearls when he was to present himself in public on State occasions.[3]

The King used to travel on horse back while making short journeys but just like a modern King he used elephant with golden trappings. V. A. Smith writes that in the middle of all the gold and glory best elaborate security precautions were taken. Since uneasy lies the head that wears the crown, his life was constantly threatened by means of plots. It was hardly possible for him to take the risk of sleeping in the day-time or to occupy the same bed-room for a couple of nights in succession.[4]

It is held that in the civil govern-ment Chandergupt depicted such an aptitude that he cannot be called an ordinary warrior-king. The court of Chandergupt Maurya was imposing one. In the later period the Grammarian Pitanjali could still recall Chandergupt-

sabha. Tradition holds several names reputed to have attended the court of the King. They are the celebrated Kautilya or Chanakya and the most celebrated, Magesthenes. Magesthenes brought his credentials from Saleucus.[5]

The administrative machinery of the State consisted of the sovereign, the viceroys, the governors who functioned as deputy Kings as the sovereign's representatives, the ministers, the heads of departments, the subordinate civil servants and the officers incharge of rural administration.[6] The first and foremost duty of the King was to take counsel with a number of wise men. The King was to check up the ways and means of ensuring the defence of the country and proper foreign relations. He was to take notice of the sources of the state in men and material. He was also to be aware of the unforeseen calamities.[7]

The King had council of ministers whose number was fixed. The ministers performed their duties in different departments assigned to them. Generally the King was to transact all administrative business along with the ministers in attendance. In the case of ministers who were not present, their advice was sought by dispatch of letters. In the case of any urgent business the King summoned his advisers as well as the council of ministers. He would generally act on the opinion of majority in the joint meeting of the counsellors and ministers.[8]

As a matter of fact, Maurya kings were despots with the result that there was centralized bureaucracy. Budha Parkash states that in the Arthasastra there is no reference to these millionaires who controlled the government. In stead of them there were nagaraka and gopa running the administration of the cities. In rural areas the samaharta was the head of a unit of 3200 villages, the sthaniya was incharge of a circle of 800 villages. The dromamukha managed the affairs of 400 villages. A secretariat of 31 departments was having a president and a superintendent who administered the affairs.[9] The policy of the departments was chalked out by the advisers of the king and their functions were co-related by a counsel of ministers having a chairman and a chief. The highest

salary was 48000 panas payable to the Chief Minister, Chief Priests, Commander-in-Chief and the Crown Prince. The lowest salary was 60 panas payable to peons and orderlys etc.[10]

The vast and complicated bureaucracy functioned in social and economic life which resulted in tyranny and exploitation so much so that the people groaned and revolted. For instance the citizens of Taksasila rose in revolt against the Maurya officials but when the princes of royal family approached and pacified them they acknowledged their loyalty to the State and complained against the high-handedness of the wicked officials. This depicts that the people wanted to be loyal to the throne but the cruelty of the officials compelled them for rebellion.[11]

It is very significant to delineate in a few lines the justice and crime pertaining to the reign of Chandergupt Maurya. There were a number of courts dealing with criminal and civil cases. Petty cases were taken up by the village panchayats while the significant cases were disposed off by the courts which were properly graded. Civil and criminal cases were finalized on the basis of Manusmirti. A court was managed ordinarily by six judges who were having expertise in law. Magesthenes holds that the subjects of the Empire were law abiding. Crimes were not frequently committed. The Mauryan penal code was strict. Penalty of death and mutilation of limbs was imposed in ordinary cases such as evasion of taxes, giving false evidences, causing injuries to men and sacred trees.

Military Administration

Kautilya takes good notice of the Mauryan army. He gives details of the weapons and machines which were used at that time. Three kinds of swords were in use-sword with curved blade, sharp and long. The handles were made of horns of animals. There were several kinds of armours or coats of mail for the whole body. There were dresses of woven threads. There were armours made of skin of animals like elephants; helmets were also used.[12]

It is to be noted here that the bravery of Indian army was well known beyond the boundary of India in the early times. The infantry had to resort to drill and

training. The king used to review the troops daily at sun rise. The infantry was able to take military exercise on all kinds of grounds in all weathers. It implies that infantry was superior to other arms of the military wings. It is chiefly because horses, elephants and chariots were unable to operate on all weathers and on the rough surface. Our writer under reference gives the statements of Kautilya suggesting the inspiring speeches to the army by the King. It is said that a soldier was liable to go to hell and would not receive the privilege of proper funeral rights being performed at his death if he did not fight in return for the assistance he owed to his master. [13]

Rewards were given to the soldiers by the Commander-in-Chief to the value of the feats performed or the victory achieved; those were 100000 panas for killing a hostile King, 50000 panas for killing his Commander-in-Chief etc. etc. The chief function of cavalry in a battle was to check up the discipline of the army and protection of its sides. Horses were very significant in Chandergupt's army so much so that a department was set up for their recruitment and proper training. The horses were classified according to their breed, age, colour and size. Diet of horses was fixed. Treatment for their disease was also carefully taken up.[14] The war-chariots were very significant part of the army. The Chariots were to protect the army, repel the attack of the enemy, break the compact array of the enemy's army, frightening, inspiring by means of sound etc.[15] V.A. Smith holds that Chandergupt Maurya owed his throne and Empire to his army. It was maintained at great numerical strength. It was well organised, well quipped and maintained to attain a high degree of efficiency. It is to be particularly noted that the army was not a Militia. It was a standing army and used to draw regular pay. The government supplied horses, arms equipments and stores. The big army was managed by Chandergupt Maurya. He raised the infantry to the strength of six lakhs. He maintained 30 thousand horses and 9 thousand elephants. They were all regularly paid. The elephants were considered the most valuable section of the army. Smith quotes Chanakya who observes "it is on elephants that the destruction of

enemy's army depends."[16]

By way of conclusion we may plead the arguments of the writers under reference mentioned above that the civil and military administration of Chandergupt Maurya was par excellence.

- Dr. Kavita Rani
Assistant Professor,
Department of Open and Distance Learning, Punjabi University, Patiala (Punjab)
Mob. 9781086412

References :

1. K. A. Nilakanta Sastri, Age of Nandas and Mauryas, Delhi, 1967, p.158
2. Megasthenes who stayed in a city for a long time writes that Patliputra was a magnificent city.
3. Vincent A. Smith, The Early History of India from 600 B.C. to the Muhammadan Conquest, Oxford University Press, London, 1924, pp. 127-128
4. Ibid., pp. 128-130
5. K. A. Nilakanta Sastri, op. cit., pp. 160-161
6. Radha Kumud Mookerji, Chandergupt Maurya and his Times, Delhi, 1966, p.77
7. Ibid., p.78
8. Ibid., p.79
9. Buddha Prakash, Studies in Indian History and Civilization, Agra, 1962, pp.192-193
10. Ibid.
11. Ibid., p.193
12. Radha Kumud Mookerji, op. cit., p. 170
13. Ibid., p. 172
14. Ibid., p. 172-173
15. Ibid., p. 173
16. Vincent A. Smith, op. cit., p. 131

Sri Aurobindo Ghosh as a Radical Feminist

- Sukla Roy
Research Scholar

- Dr. Indrani Ghosh
Assistant Professor

ABSTRACT

Feminism is the belief in the equality of rights for all men and women. However gender roles in any society are not natural. They are constructed by society and are mostly predetermined. The Indian society is largely patriarchal in nature. Nevertheless, Indian culture has always laid stress on women and her power. It

is not only in the Puran that the women appear so large, but also in Shaktism (Sanskrit-saktah) women are considered as the supreme power. In the male dominated history of Upanishads, we often come across the faint voices of scholarly women too. Sri Aurobindo, an Indian theosophist was one of the most radical feminist of the last century. He gave women forefront position of his work. His writings especially 'Shakti', 'Savitri' and 'The Mother' illuminated women's position and role in the transformation of the world.

The present study aims at exploring Sri Aurobindo's literary work; and enumerates Sri Aurobindo's views on feminism. Through an extensive review of primary and secondary sources, it has been found that Sri Aurobindo has drawn a relationship between women and nature. His writings strongly advocated women's empowerment. Through his writings he proved that the women can change her destiny and the world. He considered women as 'Shakti' goddesses of will-power, love, and knowledge.

Key words - Feminism, Women Empowerment, Kowledge, Spirituality

INTRODUCTION :

Sri Aurobindo the great poet, guru, educationist, and feminist had always emphasized on true education that provided a free and creative environment for a child to grow mentally, morally, aesthetically, and helped the child to enhance his inner interest and creativity which finally led to the development of his spiritual power. The responsibilities of this real education of a child could be entrusted only on the mother. According to Sri Aurobindo, she is the best teacher in the world. Sri Aurobindo was against the prevalent education system. He strongly believed that education system should satisfy the needs of modern life and laid equal stress on the knowledge of one's heritage and culture. For him heritage is the soul of a nation.

The ancient Indian culture and literature placed women in an honorable position and described female characters as assertive, decisive, determined, enlightened, and educated. Vedic philosophy believes that both man and woman are complementary to each other. We all are familiar with the name Gargi, Maitreyee, Lopamudra,

etc. who were highly educated females of the ancient era. Sri Aurobindo tried to explore feminism through his writings. He was concerned about women's education and his writings always upheld women's power and placed them in the forefront position. Also we find that The Mother, Mira Alfassa was at the forefront of his ashram. Aurobindo's writings strongly advocated women's empowerment. Through his writings, he proved that women can change her own destiny as well as that of the world.

OBJECTIVES OF THE STUDY :

The objectives of this study are to:

• Sketch a brief biography of Sri Aurobindo;

• Analyse and critically examine Sri Aurobindo's views on feminism found in his literary work.

METHODOLOGY :

In this study the researcher has used the analytical descriptive research method followed by literature review.

BIOGRAPHICAL SKETCH :

Sri Aurobindo Ghosh was born in Kolkata on 15th August 1872. His mother was Swarnalata Devi and his father was Dr. Krishna Dhun Ghosh. He was sent to England in 1884 to study at St. Paul's School. In 1892 he was admitted to the King's College, Cambridge on a scholarship. After spending about 14 yrs in England, Sri Aurobindo returned to Bombay in 1893. This heralded a new phase in his life. In Baroda, Sri Aurobindo joined the state service in 1893. While working in Baroda in 1897, he started working as a part-time French teacher at Baroda College. During his stay in Baroda, he contributed many articles to Indu Prakash and spoke as the Chairman of the Baroda College Board. In 1901, during a visit to Calcutta, he married 14-year-old Mrinalini, daughter of Bhopal Chandra Bose. He officially moved to Calcutta in 1906. From 1907-1908, Aurobindo travelled to Pune, Bombay, and Baroda to express his support for the nation through speeches and meetings with groups. He was arrested for the Alipore Conspiracy in 1908. Aurobindo was released after a year in solitary confinement. After his release from prison, he started two new publications, Karmayogin and Dharma. In 1910, Aurobindo withdrew himself from all political activities and went into hiding

at Motilal Roy's house in Chandan nagar. Sri Aurobindo's political career spanned eight years, from 1902 to 1910.

Thereafter, he went to Pondicherry and devoted himself to his spiritual and philosophical quests. After four years of scheduled yoga, he started a monthly philosophical magazine called Arya in 1914. Some of his most important works like The Life Divine, The Synthesis of Yoga, Essays on the Gita, The Isha Upanishad, appeared serially in the Arya. At the beginning of his journey in Pondicherry, the numbers of followers were few, but over time their number increased, resulting in the formation of Sri Aurobindo Ashram in 1926. Sri Aurobindo left his body on December 5, 1950. The Mother, his spiritual collaborator carried on his work until November 17, 1973.

SRI AUROBINDO'S VISION ON FEMINISM:

Sri Aurobindo Ghosh was one of the most radical Indian feminist that ever existed. Women as envisioned by Aurobindo are a subject of discussion and are still to be discovered. Sri Aurobindo was contemporary to Rabindranath Tagore, Swami Vivekananda and Mahatma Gandhi. All of them emphasized on women's education and believed that when women become literate they can participate in every field equally as men. They were all feminists at heart. Tagore showed empathy for women through his writings. He uncovered the dilemma of women and showed the way towards their liberation. Gandhiji tried to eradicate the customs and laws which suppressed women. He advocated that rules of social conduct must be framed for both man and women alike. Swami Vivekananda also emphasized on women's education. He was against the unfair discrimination between sexes. He was of the opinion that there is nothing as men and women, both are human beings, the soul is eternal and hence there is no gender bias.

Sri Aurobindo thought differently about feminism. His feminism is much beyond religious conservation and liberty. According to Sri Aurobindo, women are very crucial for a nation. National development will not be possible by avoiding women. A woman is a mother who gives birth to a new

generation, a new era. Aurobindo's writings unfold women's power and strength. He acknowledged women as Prakriti the pure consciousness. In the epic 'Savitri : A legend and symbol' he envisioned woman as a fighter who had the courage to confront Yama, the God of death and win back her husband's life. He established Savitri as the symbol of truth, love, and victory. Savitri's husband Satyaban represents the soul of humanity in the grip of death and Savitri brings him back by her pure love which signifies that when mankind is on the verge of death only a woman can rejuvenate it. Through Savitri, Sri Aurobindo showed that women have the power to change her destiny and that of the world.

In the epic, Savitri says:

'I am stronger than death and
greater than my fate;
My love shall outlast the world,
doom falls from me
Helpless against my immortality'.
(Conto 1 Book VI 432)

Aurobindo envisaged Savitri as a warrior. She is more powerful than death and can change the destiny of her love. The debate between Savitri and the God of death is a debate between light and darkness, good and evil, knowledge and ignorance. Savitri's victory over death and revival of Satyaban is a symbol of the union of the spirit and the creation itself. Sri Aurobindo elevated the status of the woman at a time when feminism had scarcely knocked at the Indian doors.

In his book 'The secret of Veda', Sri Aurobindo depicted all the forces which belonged to the supernatural world like pure intuition; pure inspiration, etc. as female entity.

Sri Aurobindo wrote 'Hym to Durga' in 1909 when he was associated with the freedom struggle. In this poem, Sri Aurobindo considered Devi Durga as a Goddess of war, will- power, love, strength, and protection. She was depicted as the power of peace, prosperity, and righteousness. Durga fights against evil and demonic forces that threaten peace, prosperity, and religion. Durga is deadly as a protective mother goddess, who expresses her wrath against the evil. Asura or the evil bowed his head at the feet of female power. The poet has called for women's power to protect the nation. The poet evoked Devi Durga as-

মাতঃ দুর্গে! শ্যামলা সর্ব্বসৌন্দর্য্য-অলঙ্কৃতা জ্ঞান প্রেম শক্তির আধার বঙ্গভূমি তোমার বিভূতি, এতদিন শক্তিসংহরণে আত্মগোপন করিতেছিল। আগত যুগ, আগত দিন, ভারতের ভার স্কন্ধে লইয়া বঙ্গজননী উঠিতেছে, এস, মাতঃ, প্রকাশ হও ॥

মাতঃ দুর্গে! অন্তঃস্থ রিপু সংহার করিয়া বাহিরের বাধাবিঘ্ন নির্ম্মূল কর। বলশালী পরাক্রমী উন্নতচেতা জাতি ভারতের পবিত্র কাননে, উর্ব্বর ক্ষেত্রে, গগন-সহচর পর্ব্বততলে, পূতসলিলা নদীতীরে একতায় প্রেমে, সত্যে শক্তিতে, শিল্পে সাহিত্যে, বিক্রমে জ্ঞানে শ্রেষ্ঠ হইয়া নিবাস করুক, মাতৃচরণে এই প্রার্থনা, প্রকাশ হও ॥

The poet prayed to Devi Durga to rise from the eastern horizon, spread the light of dawn, and destroy the darkness that was engulfing our country. India, the world's noblest nation was plunging into darkness. The poet evoked Devi Durga to step into the mortal world and destroy the enemy within us, and eliminate all external obstacles. Sri Aurobindo worshiped Devi Durga as a Mother of all creation in nature. Through her grace and influence human can become fit for great work and ideals. According to him, only a Mother can destroy our smallness, our selfishness, our fear.

Sri Aurobindo also acknowledged that the spirit of women is tame less while her love is intense. In most of his literary works Sir Aurobindo has put women's power above all and has considered her as 'Shakti'. In his poem 'Bride of Fire' he considered Fire God, that is, Sun as a male character and his light as a female, who is the source of all his energies and can assimilate all types of negativity within her.

CONCLUSION :

Men and women are the two fundamental components of the universe. Nature gives them equal priority to remain in equilibrium. But in our society this concept is not reflected. Indian culture gives priority to women but the erroneous interpretation of these scriptures degrades the position of women. In present times, we all are aware of the fact that equal access in education irrespective of gender, is vital. Education plays a crucial role in emancipating women from bondage. Sri Aurobindo envisioned education as an instrument for the true manifestation of the soul and mind. His academic interests were interdisciplinary and non gendered. He held a woman in high esteem as he envisioned nature as woman, and the energy of life, the Shakti, also as woman. To construct a new social reality and establish equality between man and woman it is important to go through the literary works of Sri Aurobindo and follow his system of integral education.

- Sukla Roy
Ph.D Research Scholar (DHWU) &
Assistant Professor Teachers'
Training Department
Panskura Banamali College, (W. Bangal)
(Autonomous) Mob. 7583925577

- Dr. Indrani Ghosh
Assistant Professor
Department of Education
Diamond Harbour
Women's University

References :

JOURNALS :

- Das, P. K. (2020). Educational Philosophy and Contribution of Sri Aurobindo to the field of Education. International Journal of Ceative Research Thoughts (IJCRT), 8(7), 1697-1701.
- Deshmak, N. & Mishra, M. (2014). A study on The Educational Thought of Sri Aurobindo. Indian Journal of Applied Research, 4(7), 150-151.
- Kaur, B. (2013). The Contribution of The Educational Philosophy of Sri Aurobindo Ghosh In The Present System of Education. International Multi disciplinary E-Journal, 11 (v), 84-88.
- Mandal, R. (2017). Sri Aurobindo's Savitri as a Feminist Epic. Pune Research An International Journal of English, 3(4), 1-10.
- Rani, C. (2017). A study of Educational Vision of Aruobind Ghosh. The International Journal of Indian Psychology, 5(1), 48 – 51.
- Sharma, S. (2014). Sri Aurobindo's Savitri: A Tapestry of Female life-Force. Research Journal of English language and Literature (RJELAL), 2(3), 307-311.

BOOKS/THESIS

- Sri Aurobindo. (1953). Sri Aurobindo on Himself and on the Mother. Pondicherry: Sri Aurobindo International University Centre.
- Sri Aurobindo and The Mother. (1978). On Women. Pondicherry : Auro Publications.
- Sri Aurobindo. (1998). The Secret of the Veda. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram Publication.
- Sri Aurobindo. (2005). The Life Devine. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram Publication.
- Sri Aurobindo. (2009). Collected Poem. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram Publication.
- Sri Aurobindo. (2011). Letters on Himself and the Ashram. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram Publication.
- The Mother. (1950). The Mother On Education. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram Publication.
- Tripathy, S. (1991). Sri Aurobindo's concept of Woman: A literary analysis. Ph. D. Thesis. Department of English. Sambalpur University.

देवनागरी लिपि के विभिन्न सोपान

– ब्रजेश उपाध्याय

शोध सारांश

प्रत्येक भाषा की अपनी एक लिपि होती हैं। लिखित ध्वनि चिन्हों को लिपि कहते है। जैसे हिन्दी देवनागरी लिपि में, अंग्रेजी रोमन लिपि में, उर्दू फारसी लिपि में, पंजाबी गुरू मुखी लिपि में लिखी जाती हैं। इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि लिपि के विकास की तीन अवस्थाएं हैं :– **चित्रलिपि, भावलिपि, ध्वनिलिपि।**

8वीं सदी में राष्ट्रकुल राजवंशों में भी देवनागरी लिपि प्रचलित थी। देवनागरी लिपि भारत के सर्वाधिक क्षेत्रों में प्रचलित रही है उतरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात आदि प्रांतों में उपलब्ध शिलालेखों, हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों में देवनागरी लिपि का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। देवनागरी लिपि विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है इसका विकास तो ब्रह्मी लिपि से हुआ हैं। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि हैं। ''ब्रह्मी लिपि की उतर शैली में 4–5 सदी में गुप्त लिपि तथा गुप्त लिपि से छठी सदी में कुटिल विकसित हुई है इस कुटिल लिपि से 9वीं सदी में लगभग नागरी के प्राचीन रूप का विकास हुआ है जिसे प्राचीन नागरी भी कहते है"[1] देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग "गुजरात के राजा जयभट्ट के एक शिलालेख में किया गया" गुजरात के नागर ब्राहमणों के नाम पर नागरी नाम पड़ा।[2] देवनागरी लिपि का प्रयोग हिन्दी, मराठी, संस्कृत, नेपाली आदि भाषाओं को लिखने के लिए किया जाता हैं।

मूल शब्द : देवनागरी, नंदनागरी, गुप्त, चित्र, भावमूलक लिपि, राष्ट्रीय जागरण, सम्मेलन, उपसंहार।

देवनागरी लिपि की विकास यात्रा एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :–

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार आज तक लिपि के संबंध में जो प्राचीनतम सामग्री उपलब्ध है कहा जाता है कि 10000 ई.पूर्व से 5000 ई. पूर्व के बीच लगभग 6000 वर्षो से धीरे–धीरे लिपि का प्रारम्भिक विकास होता रहा हैं। लिपि का विकास क्रम इस प्रकार है–चित्रलिपि, सूत्रलिपि, प्रतीकात्मक लिपि, भावमूलक लिपि, ध्वनिमूलक लिपि है। क्योंकि प्राचीन भारत में शिलालेखों एवं सिक्कों पर दो लिपियां मिलती हैं। ब्रहमी लिपि और खरोष्ठी लिपि। देवनागरी लिपि का विकास ब्रह्मी लिपि से हुआ है जो पहले गुप्त लिपि फिर कुटिल लिपि और अन्ततः 9वीं सदी में देवनागरी लिपि के रूप में विकसित हुई थी।

देवनागरी लिपि के नामकरण के विषय में अनेक मत हैं –

"प्रसिद्ध बौद्व ग्रंथ ''ललित–विस्तार में वर्णित नागर लिपि से नागरी। नागरों में प्रचलित होने से देवनागरी नाम पड़ा। गुजरात के नागर ब्राह्मणों के नाम पर नागरी नाम पड़ा। देवनागरी का सर्वप्रथम प्रयोग गुजरात के राजा जय भट्ट (7वीं–8वी सदी) के एक शिलालेख में हुआ है। भारत के उतर–पश्चिमी भागों में (कश्मीर एवं पंजाब) में आठवीं शती में कुटिल लिपि प्रचलित थी दसवीं सदी के आस–पास कुटिल लिपि से ही शारदा लिपि निकली। सिद्ध मात्रिका आदि अन्य लिपियां भी नागरी के निकट संबंध की है इस प्रकार निम्न बातें स्पष्ट हैं :–

(1) देवनागरी लिपि का आदि स्त्रोत ब्रह्मी लिपि हैं।

(2) देवनागरी लिपि आक्षरिक हैं ।

(3) देवनागरी की वर्णमाला का वर्णक्रम वैज्ञानिक हैं।

(4) 14 सितम्बर 1949 को भारत के सविधान में अनुच्छेद 343 के अन्तर्गत संघ की राजभाषा हिन्दी एवं लिपि देवनागरी घोषित कर दी गई।

(5) भारत की दो प्राचीन लिपियां थी । ब्राह्मी लिपि एवं खरोष्ठी लिपि । ब्रह्मी लिपि से ही देवनागरी लिपि विकसित हुई हैं।

(6) देवनागरी लिपि का प्रयोग हिन्दी, मराठी, नेपाली भाषाओं को लिखने में होता है इसके अलावा संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश भी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं।

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता एवं प्रमाणिकता :

1. वर्ण विभाजन में वैज्ञानिकता :– देवनागरी लिपि में स्वरों एव व्यंजनों का वर्गीकरण वैज्ञानिक पद्वति से किया गया है। इसमें 14 स्वर, 35 व्यंजन और 3 संयुक्ताक्षर है। व्यंजनों का वर्गीकरण उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के आधार पर किया गया हैं।

2. देवनागरी लिपि में प्रत्येक ध्वनि के लिए एक चिन्ह :– यह देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता है जबकि रोमन लिपि, फारसी लिपि में एक ध्वनि के लिए कई विकल्प हैं। उदाहरण के लिए देवनागरी की "क" ध्वनि रोमन लिपि में कई तरह से लिखी जा सकती है।

कैट –Cat	क के लिए C
किंग– King	क के लिए K
कैमिस्ट्री–Chemistry	क के लिए Ch

देवनागरी लिपि एक वर्णनात्मक लिपि है सभी वर्ण उच्चारण के अनुरूप है। रोमन लिपि और फारसी लिपि में यह गुण नहीं है रोमन लिपि में ज ध्वनि के लिए J या Z लिखा जायेगा ।

3. गत्यात्मक लिपि :– देवनागरी लिपि अत्यंत व्यवहारिक एवं गत्यात्मक है फारसी लिपि की जो ध्वनियां हिन्दी में व्यक्त होती है उन्हें देवनागरी लिपि में क, ख, ग, ज, फ आदि से व्यक्त करते हैं।

4. देवनागरी लिपि कम खर्चीली है तथा मुद्रण, टंकण एवं टाईप में कम खर्चा होता है यह कम स्थान घेरती है यही इसकी वैज्ञानिकता हैं ।

देवनागरी लिपि : सुधार और संशोधन

सर्वप्रथम महाराष्ट्र के सावरकर बन्धुओं ने 'अ' की बारहखड़ी तैयार करने का सुझाव दिया तथा सर्वप्रथम महात्मा गांधी के 'हरिजन सेवक' के रूप में इसका प्रयोग हुआ। लाला श्रीनिवास दास ने महाप्राण वर्णों के बदले अल्प प्राण वर्णों के नीचे कोई चिन्ह लगा दिया जाए जिससे वर्णों की संख्या में कमी आएगी। उत्तर प्रदेश सरकार ने 31 जुलाई 1947 में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में नागरी लिपि सुधार समिति गठित की थी।[4]

1. सर्वप्रथम महोदव गोविन्द्र रानाडे ने लिपि सुधार समिति गठित की थी। 20वीं शती में लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र 'केसरी' में लिपि सुधार की चर्चा की थी ।

2. डॉ. श्यामसुंदर दास का सुझाव था कि पंचम वर्ण के स्थान पर केवल अनुस्वार का प्रयोग किया जाए– पञ्च–पंच, कम्बल – कंबल, हिन्दी – हिंदी, कण्ठ–कंठ, गड़ा–गंगा।

3. 5 अक्टूबर 1941 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने लिपि सुधार समिति की बैठक आयोजित की जिसमें मात्राओं को उच्चारण क्रम में लगाने, छोटी 'इ' की मात्रा को व्यंजन के आगे लगाने तथा 'प्र' को, श र को श्र रूप में लिखने का सुझाव दिया।

आचार्य नरेन्द्र समिति के निम्न सुझाव थे :–

"अ की बारहखड़ी भ्रामक है। मात्राएं यथा स्थान रहे, किन्तु उन्हें थोड़ा दाहिनी ओर लिखा जाए। अनुस्वार एवं पंचम वर्ण के स्थान पर सर्वत्र शून्य () से काम चलाया जाए। संयुक्त वर्णों क्ष, त्र, ज्ञ को वर्णमाला में स्थान दिया जाए।"[5]

1953 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय बैठक हुई जिसमें हस्व 'इ' की मात्रा व्यंजन से पूर्व लगाई जाए, ख, ध, भ, छ को क्रमशः ख, ध, भ, छ के रूप में लिखा जाए। देवनागरी लिपि में अंग्रेजी की ऑ ध्वनि को स्वीकार कर लिया है तथा फारसी की क, ख, ग, ज, फ ध्वनियाँ भी अपनाई गई है।

देवनागरी का वैशिष्ट्य एवं प्रमाणिकता

1. रोमन लिपि में कई बार वर्णमूक रहते हैं उनका उच्चारण नहीं किया जाता। लेकिन उन्हें लिखा जाता है जैसे – Know, Knife, Tsunami आदि लेकिन देवनागरी लिपि में प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता है ।

2. देवनागरी लिपि में रोमन के समान कैपिटल लेटर और स्मॉल लेटर का झंझट नहीं है। वास्तव में आदर्श लिपि वही जिसमें एकरूपता हो ।

3. देवनागरी लिपि में सभी नासिक्य ध्वनियों के लिए अलग–अलग चिन्ह हैं जैसे रोमन में ड., ञ, ण, सभी को N से लिखा जाता है ।

4. देवनागरी एक वैज्ञानिक लिपि है तथा कम्प्यूटर की दृष्टि से भी उपयुक्त है।

राष्ट्रीय जागरण का आधार देवनागरी लिपि :–

कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी के संस्थापक अध्यक्ष विलियम जोन्स के 1784 एक लेख से देवनागरी लिपि का आंदोलन प्रारम्भ हो गया जोन्स ने इसे राष्ट्र लिपि माना। मई 1793 को ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन का संविधान लागू हुआ जिसमें प्रथम अनुच्छेद की तृतीय धारा में देवनागरी लिपि को सरकारी स्वीकृति प्राप्त हुई धीरे–धीरे भारतीयों का राष्ट्रलिपि देवनागरी लिपि के प्रतिमोह बढ़ने लगा। सन् 1796 ई. में देवनागरी लिपि में मुद्राक्षर आधारित प्राचीनतम मुद्रण (जॉन गिलक्राइस्ट, हिन्दुस्तानी का व्याकरण, कोलकाता)। दस्तावेजों से पता चलता है कि सन् 1809 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सरकारी सिक्कों पर फारसी के साथ–साथ देवनागरी

लिपि को भी अंकित किया था। लेकिन मात्र 26 वर्ष बाद सन् 1835 के अधिनियम 17 के तहत देवनागरी लिपि का उन्मूलन कर दिया गया और सिक्कों पर केवल रोमन एवं फारसी लिपि को ही अंकित किया गया। आधुनिक युग में काका कालेलकर की अध्यक्षकता में नागरी लिपि सुधार समिति का गठन किया गया।

1904 में बाल गंगाधर तिलक ने नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिक सम्मेलन में भाषण देते हुए पूरे भारत के लिए समान लिपि के रूप में राष्ट्रीय लिपि देवनागरी की वकालत की थी इससे भी उत्तर–पश्चिम भारत में राष्ट्रीय जागरण की लहर दौड़ पड़ी थी। 1893 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना की तथा 1897 में काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका में देवनागरी लिपि का प्रचार–प्रसार किया गया। 1892 ई. में बिहार में उर्दू के स्थान पर देवनागरी में लिखी गई हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया।

बनारस के बाबू शिवप्रसाद ने आरम्भिक मुसलमान शासकों पर भारत के ऊपर फारसी भाषा और लिपि थोपने का आरोप लगाया (इतिहास तिमिरनाशक नामक पुस्तक में) इससे भी राष्ट्रलिपि देवनागरी का उत्कर्ष बढ़ा।

1935 ई. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का 24वां अधिवेशन पुनः इंदौर में आयोजित हुआ तथा गांधी जी दूसरी बार सभापति बने। गांधी जी ने राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं देवनागरी लिपि के प्रचार के लिए एक अध्यक्षीय भाषण में कहा "यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा एवं लिपि देवनागरी बनाना है तो प्रचार कार्य सर्वव्यापी एवं सुसंगठित होना चाहिए।'' गांधी जी ने अपने भाषण में कहा कि ''हिन्दी उस भाषा का नाम है जिसे हिन्दू एवं मुसलमान कुदरती तौर पर बोलते हैं। हिन्दुस्तानी एवं उर्दू में कोई फर्क नहीं है। देवनागरी में लिखी जाने पर हिन्दी और अरबी में लिखी जाने पर वह उर्दूक हो जाती है।'' इस प्रकार गांधी जी के भाषणों से भारतीयों में देवनागरी लिपि व हिन्दी भाषा के प्रति मातृ प्रेम जागा व राष्ट्रीय जागरण की लहर पूरे देश में प्रज्वलित हो गई।

निष्कर्ष

इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि देवनागरी लिपि में वह सभी विशेषताएं उपलब्ध हैं जो एक वैज्ञानिक एवं मानकीकृत लिपि में होनी चाहिए। यह विश्व की अन्य लिपियों की जन्मदाता है। उस लिपि को वैज्ञानिक लिपि कहते हैं जो दोषमुक्त हो, पूर्णत प्रमाणित एवं वैध हो । भाषा वैज्ञानिकों ने देवनागरी को विश्व की उच्चकोटि की लिपि घोषित किया है। यदि हम देवनागरी के गुण–दोषों का विवेचन अंग्रेजी की रोमन लिपि और उर्दू की फारसी लिपि से करेंगे तो इस लिपि की वैज्ञानिकता अपने आप ही सिद्ध हो जाएगी। यही कारण है कि आज इसे विश्व की वैज्ञानिक लिपि, राष्ट्र लिपि की संज्ञा दी गई है क्योंकि इसके उच्चारण, लेखन, टंकण, मुद्रण में एकरूपता है। यह अत्यंत कलात्मक, गत्यातमक, सरल, सुंदर, स्पष्ट एवं नियमबद्ध लिपि है ।

– ब्रजेश उपाध्याय
पुत्र श्री ज्ञानेश्वर उपाध्याय
क्वार्टर नं. 4, टाइप–3, टीचर्स कॉलोनी,
बीएसएफ कैम्प, पलौरा, जम्मू–181124
मोबा. 7780851547

संदर्भ :

1. गोविन्द पाण्डे एवं सरस्वती पाण्डेः हिन्दी भाषा का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृष्ठ 29
2. गोविन्द पाण्डे एवं सरस्वती पाण्डे हिन्दी भाषा का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृष्ठ 30
3. गोविन्द पाण्डे एवं सरस्वती पाण्डे हिन्दी भाषा का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृष्ठ 29
4. गोबिन्द पाण्डेय, सरस्वती पाण्डेय हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास, पृष्ठ सं. 30
5. उदयनारायण तिवारी रू हिन्दी भाषा का उद्गम एवं विकास, पृ. सं. 128

पत्र–पत्रिकाएं एवं कोश ग्रंथ

1. काशी नगरी प्रचारिणी पत्रिका (1897) विगत 20 वर्षों का सिंहवालोकन
2. हिन्दी विश्व साहित्य कोश – संपादक श्री सुधाकर पांडेय
3. हिन्दी वैज्ञानिक कोश

वे बाते जिन्हें बुद्ध ने स्वीकार किया

- बुद्ध की शिक्षा की पहली विशेषता है कि मन को सभी चीजों का केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया गया।

- मन चीजों का पूर्वगामी है वह उस पर प्रभाव डालता है। वह उन्हें उत्पन्न करता है। यदि मन काबू में है तो सब कुछ काबू में है।

- मन ही सब मानसिक क्रियाओं में प्रधान है, मन ही मुख्य है। मन उन चैतसिक क्रियाओं की ही उपज है।

- इसलिये सबसे मुख्य बात मन की साधना है।

- बुद्ध की शिक्षाओं की दूसरी विशेषता है कि मन ही उन सब भलाईयों और बुराईयों का स्त्रोत है जो हमारे भीतर उत्पन्न होती है और जिनका हमे बाहर से शिकार होना पड़ता है।

- उनकी शिक्षाओं की तीसरी विशेषता है सभी पाप कर्मो से विरति।

- उनकी शिक्षाओं की चौथी विशेषता है कि धर्म धार्मिक ग्रंथो के पाठ में नही है, बल्कि धार्मिक जीवन जीने में है।

आश्वस्त

मैं दबे-कुचले समाज को जिल्लत भरी जिंदगी से निकालकर मान-सम्मान वाली जिंदगी देकर उसको अपने पैरो पर खड़ा देखना चाहता हूँ ।

मा. कांशी राम

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

_____

_____

_____

_____

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से मालवा ग्राफिक्स , 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार

अक्टूबर 2023